International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(6): 32-35

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(6): 32-35
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-09-2017
Accepted: 11-10-2017

भूपेन्द्र प्रताप सिंह
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद, विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
भूपेन्द्र प्रताप सिंह
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद, विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

उपनिषद्–वाङ्मय में उद्घाटित ब्रह्म का स्वरूप

भूपेन्द्र प्रताप सिंह

प्रस्तावना

'वेद' समस्त विश्व साहित्य की ज्ञान राशि का उद्गम स्थान है। भारतीय महर्षियों द्वारा प्रत्यक्षदृष्ट वेद नित्य, अनादि और अपौरूषेय कहे जाते हैं। नैयायिकों के अनुसार वेद परमेश्वर द्वारा निर्मित हैं। वेद विहित कर्म ही धर्म होता है। वेद स्वयं भगवान के स्वरूप हैं तथा उनका स्वयं प्रकाश ज्ञान है। 'वेद' समस्त विश्व साहित्य की ज्ञान राशि का उद्गम स्थान है। भारतीय महर्षियों द्वारा

वेद प्रणहितों धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम।।[1]

भारतीय साहित्य के मूलाधार वेद, उपनिषद्, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा विविध धर्मशास्त्र एवं दर्शनों आदि में ब्रह्मविषयक परमसत्ता के विश्वस्वरूप का उद्घाटन किया गया है। उस परमात्म तत्त्व का निर्धारण करते हुए वैदिक महर्षियों ने उसे तत् (तदेकम) तथा सत् आदि कहा। उस परमब्रह्म की अनेक संज्ञायें है, यथा–उसे परमदेवता, प्रजापति, हिरण्यगर्भ, पुरुष, अदिति, उच्छिष्ट, इन्द्र, मित्रावरूण, अग्नि आदि के रूप में प्रतिस्थापित किया जाता है। वह परमात्मा एक सत् स्वरूप वाला ही है, वह एक होकर भी अनेक नामों से पुकारा जाता है।

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'।[2]

भारतीय आस्तिक परम्परा में ईश्वर की उपासना का विधान है। वेदों की मान्यताओं को स्वीकार करते हुए उस सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी परमतत्व की पूजा–अर्चना करनी चाहिए। ज्ञान, अध्ययन और अनुष्ठान रूपी नाचिकेत अग्नि का चयन करते हुए माता–पिता और आचार्य से सम्बद्ध होकर मनुष्य तीन कर्मों–ईर्ष्या, अध्ययन और दान करता हुआ जन्म और मृत्य के बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्म स्वरूप, सर्वस्व ज्ञानी, स्तुतियोग्य परमात्मा को साक्षात्कार कर शान्ति को धारण करता है।

ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमांशान्तिमत्यन्तमेति।[3]

समस्त जीव परमात्मा के भिन्नांश हैं, अर्थात् जो परमान्दघनस्वरूप परमात्मा सभी प्राणियों की उत्पन्न करता है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि जगत् आच्छादित है उस सर्वव्यापी परमेश्वर की मनुष्य द्वारा अपने–अपने कर्मों को करते हुए उपासना करनी चाहिए। उसी परमसत्ता में यह सम्पूर्ण प्रप०च जगत् स्थित है। अतः उसकी सर्वव्यापकता असीम है, सर्वशक्तिमान है– 'येन सर्वमिदं ततम्'।[4]

ऋग्वेद प्रातिशाख्य में वेद को धर्मादि पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का मूल स्त्रोत कहा गया है। यथा– विद्यते ज्ञायते लभ्यते वैभिर्धर्मादि पुरूषार्थ इति वेदाः। भारत विश्व का ऐसा भू–भाग है जहाँ की संस्कृति, सभ्यता, समरसता तथा आचार–विचार आदि के द्वारा बलपूर्वक किसी भी देश या परम्परा या मतादि को अपने प्रभाव में लेने का प्रयास नहीं किया गया। इस दृष्टि से समस्त विश्व तथा भारत का सम्बन्ध 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के अटूट विश्वास का परिचायक है। इस प्रेरणार्थक एकता की विचारधारा के मूल में कर्त्तव्यज्ञानयुक्त ब्रह्मवाक्य 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' ही प्रसिद्ध है। भारत की सांस्कृतिक परम्परा तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था इतनी उदार एवं सर्वग्राह्य रही है जिसके द्वारा प्राचीन काल से ही सभी प्राणियों की भावनाओं और उनके विचारों के प्रति सम्मान तथा समन्वय दृष्टिगोचर होता है। यह श्रेष्ठ विचार 'वादे–वादे जायते तत्त्वबोधः' उक्ति से सिद्ध होता है।

'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'[5] अर्थात् वेद भारतीय धार्मिक व्यवस्था का मूल है। इसके द्वारा चतुर्दिक दृष्टिगोचर सृष्टि, जगत्, ब्रह्माण्ड, विभिन्न प्रकार की जड़–चेतन वस्तुएँ तथा प्राणियों के सम्पूर्ण क्रियाकलापों का ज्ञान प्राप्त होता है।
परमसत्ताविषयक अमोघ पद जिसका सारे वेद बारम्बार वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति का साधन मानते हुए जिसकी इच्छामात्र से मुमुक्षु का आचरण करते हैं। वह पद ओम (ऊँकार) ही है।

सर्वेवेदा यल्वदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।[6]

कठोपनिषद् में इस अक्षर 'ओम्' पद को ही पर ब्रह्म तथा अपर ब्रह्म रूप वाला कहा गया है। इस परमपद के विषय में भलीभाँति ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाला प्राणी उस ब्रह्मपद में समा जाता है। इस पद के श्रेष्ठ आलम्बन को जानकर प्राणी ब्रह्मलोक में सम्मान एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।[7]

सत्य तो एक परमसत्ता ही है जिसको विविध स्वरूपों, प्रकारों के रूप में विविध मतानुयायियों द्वारा स्वीकार किया जाता है। आधुनिक समय में प्राचीन मान्यताओं को आधारस्त्रोत माना जाता है। अद्यापि धार्मिक सहिष्णुता, समरसता की भावना को विकसित करने हेतु अनेक सम्प्रदायों, संगठनों, वादों तथा मतों के द्वारा अन्तिम रूप से अदृश्य एवं सर्वशक्तिमान सत्ता को ही परमसत्ता के रूप में प्रचारित एवं प्रसारित किया जाता रहा है।
भारतीय साहित्य परम्परा के अन्तर्गत वेद, उपनिषद् एवं धर्मशास्त्रों में जिस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा से इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थिति होती है। उस सत्ता के द्वारा ही यह सब चराचर जगत् पूर्णतः आच्छादित है। समस्त भोग पदार्थों को ईश्वराच्छादित मानते हुए उन्हें त्यागपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। किसी दूसरे के धन की इच्छा न करते हुए आत्मा की रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्कि०च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भु०जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[8]

अर्थात् जिस परमपिता परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों के जड़–चेतन स्वरूप का प्रादुर्भाव हुआ है तथा जिससे यह सम्पूर्ण जगत्मण्डल व्याप्त है, उस परमात्म सत्ता की प्रत्येक मनुष्य द्वारा अपने–अपने स्वाभाविक कर्मो के द्वारा पूजा–अर्चना करनी चाहिए। इसी से मनुष्य को परमसिद्धि अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। 'निश्चित रूप से यह सब दृश्यादृश्य जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है।'

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।[9]

मनुष्य का स्वाभाविक कर्म वर्णव्यवस्था पर आधारित है। प्रकृति में अन्तर्भूत सत्त्व, रजस, तमस आदि त्रिगुणों के सम्बन्ध के आधार पर परमात्मा द्वारा मानव समाज के चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का सृजन किया गया। समस्त जगत् की सृष्टि एवं प्रलय ईश्वर की इच्छा पर ही आश्रित है।

'न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।'[10]

इस प्रकार ये चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में ब्राह्मण धर्मस्थापन तथा ज्ञानबल के द्वारा, क्षत्रिय बाहुबल एवं सरंक्षकत्त्व के द्वारा, वैश्य धनबल एवं व्यापार द्वारा तथा शूद्र जनबल एवं शारीरिक श्रम द्वारा परस्पर हित की भावना विकसित करते हुए परमसिद्धि की प्राप्ति करते हैं। उस परमब्रह्म का न कोई उत्पत्तिकर्ता है और न ही कोई स्वामी ही है।[1] एकमात्र ब्रह्म ही अद्वितीय है।उस अद्वितीय परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सत्ता नहीं है।

सदैव सोम्येदग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्।[11]

अहंकार, ममता, काम, क्रोध, मद, लोभादि समस्त अवगुणों का त्याग करने वाला, अन्तरात्मा में ही सुख, रमण एंव ज्ञान का अनुभव करने वाला योगी पुरुष परमात्मा का चिन्तन करते–करते ब्रह्मरूप हो जाता है। उस पुरूष का ब्रह्मसत्ता के साथ कि०चित्मात्र भी भेद नहीं रहता।

'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'।[12]

बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्मभूत अवस्था को परमशान्ति की प्राप्ति, अक्षयसुख की प्राप्ति, ब्रह्मप्राप्ति, मोक्षप्राप्ति, कैवल्यप्राप्ति तथा परमगति की प्राप्ति कहते हैं अर्थात् वह ब्रह्म ही होकर ब्रह्म को प्राप्त करता है।

ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।[13]

ब्रह्मयोगी की दृष्टि में साक्षात्कारात्मक ज्ञान ब्रह्म का ही स्वरूप हैं वह सभी में परमात्मा का एकत्व ही देखता है वह शोक एवं मोह से रहित हो जाता है।

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।।[14]

वह अदृश्य सत्ताभूत परामात्मा –अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो'।[15]है अर्थात् नाशरहित, अजन्मा, नित्य तथा शाश्वत है उसी के द्वारा यह सब कुछ व्याप्त किया गया गया है।
विविधस्वरूपों वाला वह ब्रह्म एक ही है, अद्वितीय है। मन से भी अधिक वेगवान् सर्वत्र प्रभाव वाला, चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियों से परे रहने वाले उस परमात्मा से यह चराचर जगत् संचालित हो रहा है।[2] जो सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म में एकीभाव एवं अभिन्नता से स्थित हो, जो प्रसन्नात्मा किसी भी वस्तु के लिए मोह तथा शोक न करे, किसी अभीप्सित की कामना न करे उस योगी पुरुष की दृष्टि में एक परमसत्ता के अतिरिक्त दूसरी वस्तु की सत्ता का अस्तित्त्व नहीं होता। जिसका मन पवित्र स्वच्छ शान्त, शुद्ध एवं प्रसन्न रहता है वह आत्मा ब्रह्मरूप हो जाती है–

अनेजदेकं मनसो जवीयो, नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठात्तस्मिन्जपो मातरिश्वा दधाति।।[16]
'अयमात्मा ब्रह्म'।[17]

इस प्रकार आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर प्राणी 'तत्त्वमसि'[18] महावाक्य को चरितार्थ करता है अर्थात् तत् त्वम् असि, तुम वही हो क्योंकि जीवात्मा साक्षात् ब्रह्म ही है। 'सोहमस्मि' 'अहं ब्रह्मास्मि'[19] अर्थात् वह ब्रह्म मुझमें ही है और मैं ही ब्रह्म हूँ, इन महावाक्यों से जीवात्मा और परमात्मा का अभेदस्वरूप प्रकट होता है। इस एकीभाव के कारण परमसिद्धि की प्राप्ति भी हो जाती है।
कई हिन्दू दर्शनों में ईश्वरसत्ता का निषेध भी हुआ है। परन्तु यह परमात्मा नित्य, सत्य, अनन्त और अपार स्वरूपवाला है– 'सत्यं

ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[20] वह परमात्मा गतिशील भी है और स्थिर भी, दूर भी है और समीप भी, वह इस विश्व के भीतर भी है और बाहर भी।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः।।[21]

जिस परमात्मा से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का होना है, सारे जीव जिसके भिन्नांश है तथा जो सभी जीवों का आदिस्रोत है वह परमात्मा अनादि है– जन्माद्यस्य यतः'[22]। वह ब्रह्मभूत, सर्वव्यापी, धर्म की रक्षा हेतु बारम्बार जन्मधारण करता है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[23]

समस्त भूतों में ब्रह्म को इस प्रकार के अभेद दर्शन होने से वह घृणा आदि दोषों से मुक्त हो जाता है।[3]

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते।।[24]

सृष्टि निर्माण के क्रम में सर्वप्रथम समस्त भौतिक तत्त्वों की सृष्टि की जाती है। इस जगत का सृजन, पालन तथा संहार करने वाली सभी परम सत्ताओं का मूलाधार एक अद्वितीय ब्रह्म ही है।
वह परमसत्ता परा एवं अपना विद्या के कारण सर्वव्यापी, शुभ्रदीप्तिमान स्वरूप वाला, शरीरों से रहित, घावों, स्नायुओं तथा तन्तुओं से रहित, निर्मल, सर्वज्ञ, सर्वोपरि तथा स्वयंसिद्ध है। उसी के द्वारा ही इस चराचर जगत् में अधिवासित प्राणियों के लिए यथार्थतः भोग्य पदार्थो का विधान किया जाता है। वह ही परिभू अर्थात् सर्वोच्च तथा वह न तो अपनी सत्ता के लिए किसी पर आश्रित है और नही विश्व रूप में आर्विभूत होने के लिए किसी से सहायता लेता है अर्थात् सभी कुछ वह स्वयं ही है इसलिए वह स्वयंभू भी है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमयापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः
स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।[25]

भारत वर्ष की भूमि अध्यात्म विद्या का जन्म स्थान है। अनादिकाल से यहाँ ईश्वर की उपासना की जा रही है। एक अनवरत विधि–विधान का थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ आज भी मूलरूप ही दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक प्राणी अपने समस्त कार्यों की पूर्ति करने हेतु ईश्वर के प्रति श्रद्धा एवं विनय प्रकट करता है। अपने भाग्योदय की इच्छा करने वाला आस्तिक पुरुष अपना सर्वस्व परमात्मा को समर्पित कर उसकी कृपा का भागी हो जाता है और परमगति को प्राप्त कर जाता है।[4]
इस चराचर जगत् की सृष्टि एवं प्रलय का एकमात्र कारण परमब्रह्म परमेश्वर ही है। उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान परमान्दस्वरूप जगत् के नियन्त्रित करने वाली परमसत्ता का स्वरूप परम आध्यात्मिक तथा सत् चित् आनन्दस्वरूप है। वह ही समस्त विश्व को धारण कर विश्व स्वरूप वाला भी है। समस्त प्राणियों में मनुष्य ही श्रेष्ठ है। ईश्वर द्वारा मनुष्य को सोचने, समझने तथा चिन्तन करने की अप्रतिम शक्ति प्रदान की गई है। मानवभाव का अभीष्ट परमगति तथा परमसिद्धि को प्राप्त करना है। समस्त जीवों में एक ही आत्मा अर्थात् ब्रह्म को देखने वाला व्यक्ति इस सम्पूर्ण जगत् को परमानन्द स्वरूप परमात्मा के द्वारा व्याप्त हुआ देखता है।

अनेक प्रकार से ईश्वर के स्वरूपों, कार्यों तथा प्रकारों के स्वीकरण के बाद अन्ततः उसे एकमेवाद्वितीयम् स्वरूप वाला ही स्वीकार किया जाता है। विश्व के समस्त धर्म एवं दार्शनिक सम्प्रदाय के मनीषियों द्वारा इसी 'एकं सत्' स्वरूप परमात्मा की व्याख्या की गई है। भारतीय मनीषा की प्राचीन दृष्टि परमात्मा के एकेश्वरवाद की प्रतिपादक है। यह चराचर जगत एक ही परमसत्ता का प्रादुर्भाव है। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म', 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' आदि महावाक्यों से इसकी सिद्धि होती है।
सम्पूर्ण विश्व जिस महद्तत्त्व का अंश है उसमें विविध प्राणि, जाति, शरीर, ज्ञान, विज्ञान स्वरूप असंख्य आत्मायें है जो एक ही परमात्मा का स्वरूप है। उसी के विराट स्वरूप का अंश मात्र है। भारत वर्ष प्राचीन काल से लेकर आज तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का अक्षरशः पालन करने के लिए प्रतिबद्ध रहा है। भारत वर्ष का एक सर्वव्यापी सिद्धान्त 'सर्वे भवन्ति सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' है जिसके लिए वह सतत् प्रयासरत रहा है।
धर्माधारित लोकव्यवस्था के एक अलौकिक सत्ता का उपासक सम्पूर्ण भारतवर्ष परमसत्ता विषयक विभिन्न प्रकार के मतवादों, विचारों का निर्विरोध रूप से सम्मान करता है। तथा उसमें व्याप्त त्रुटियों, कमियों को दूर करने हेतु उचित एवं कल्याणकारी समाधान भी प्रस्तुत करता है।
सनातन हिन्दू धर्म परम्परा में ऋग्वेद में उल्लिखित महावाक्य 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' है। समस्त प्राणियों में अन्तर्निहित प्राणतत्त्व स्वरूप परमेश्वर की ही एकमात्र सत्ता है– 'एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'[26]। ईश्वर उस परमसत्ता का सगुणरूप है जो वेदों के अनुसार पराशक्तिसम्पन्न है। भारतवर्ष जो सनातन सत्ता का प्रतिष्ठापक रहा है, विविध, धर्म, दर्शन, सम्प्रदायों की जन्मस्थली है। इनके मतों में भी विविधता है। भारतीय षड्दर्शनों में ईश्वर की सत्ता की स्पष्ट रूप से चर्चा मिलती है परन्तु चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि में ईश्वर के परमसत्तारूपी स्वरूप को ग्रहण नहीं किया जाता। आस्तिक सनातन धर्म भी वैष्णव, शैव, शाक्त, स्मार्त मतों में क्रमशः भगवान विष्णु, शिव, शक्ति तथा परमेश्वर के अनेक स्वरूपों को एक समान सत्ता वाला स्वीकार करता है। योगसूत्रकार महर्षि पत०जलि 'क्लेश कर्म विपाकाशयैर्परामृष्टः पुरूषविशेष ईश्वरः' अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक (कर्मफल), आशय (कर्म–संस्कार) से सर्वथा अस्पृष्ट पुरूष विशेष को ही ईश्वर स्वरूप की मान्यता देते हैं।
जहाँ जैनधर्म में 'णमो अरिहन्ताणं' अर्थात् अरिहन्त और सिद्ध (शुद्ध आत्माओं) को भगवान कहा गया है वहीं इसाई धर्म में परमात्मा का स्वरूप एक में तीन तथा तीन में एक है यथा परमपिता, ईश्वरपुत्र और पवित्र आत्मा। इस्लाम धर्म में अल्लाह की उपासना है। हिन्दू धर्म में विविध प्रकार की उपासना पद्धतियाँ, मत, सम्प्रदाय, और दर्शन प्रचलित है। यहाँ बहुदेववाद के द्वारा एकेश्वरवाद की प्राप्ति की जाती है। अनेक देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना करते हुए एक ही परमसत्ता परब्रह्म द्वारा सबको व्याप्त किया हुआ जाना जाता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. मुण्डकोपनिषद् – (3/2/9)
2. वृहदारण्यकोपनिषद् – (4/4/6)
3. ईशावास्योपनिषद् –सप्तम् श्लोक
4. कठोपनिषद् –(1/2/18)
5. श्रीमद्भागवत् पुराण – (6/1/40)।
6. ऋग्वेद संहिता – (1/164)।
7. कठोपनिषद् – (1/1/17)।
8. श्रीमद्भगवद्गीता –(18/46)
9. मनुस्मृति –(2/6)
10. कठोपनिषद् –(1/2/15)
11. कठोपनिषद् –(1/2/16)
12. ईशावास्योपनिषद् –प्रथम मन्त्र।
13. छान्दोग्योपनिषद् – (3/4/1)

14. श्वेताश्वतरोपनिषद् – (6/9)
15. छान्दोग्योपनिषद् – (6/2/1)
16. मुण्डकोपनिषद् – (3/2/9)
17. वृहदारण्यकोपनिषद् – (4/4/6)
18. ईशावास्योपनिषद् –सप्तम् श्लोक
19. कठोपनिषद् –(1/2/18)
20. ईशावास्योपनिषद् –चतुर्थ श्लोक
21. बृहदारण्यकोपनिषद् – (2/5/19)।
22. छान्दोग्योपनिषद् –(6/8/7)
23. छान्दोग्योपनिषद् –(1/4/10)
24. बृहदारण्यकोपनिषद् –(2/1/20)
25. ईशावास्योपनिषद् –पंचम श्लोक
26. वेदान्त सूत्र – (1/1/2)।
27. श्रीमद्भगवद्गीता –(4/7)
28. ईशावास्योपनिषद् –षष्ठ श्लोक
29. ईशावास्योपनिषद् –अष्टम् श्लोक
30. श्वेताश्वतरोपनिषद् –(6/11)